16

परम वैभव के लिए सर्वांग स्वतंत्रता

'अखंड भारत' भारतीयों के लिए भूमि का टुकड़ा न होकर एक चैतन्यमयी देवी भारतमाता है। जब तक भारत का भूगोल, संविधान, शिक्षाप्रणाली, आर्थिक नीति, संस्कृति, समाज-रचना, परसत्ता एवं विदेशी विचारधारा से प्रभावित और पश्चिम के अंधानुकरण पर आधारित रहेंगे, तब तक भारत की पूर्ण स्वतंत्रता पर प्रश्नचिह्न लगता रहेगा। स्वाधीन भारत में महात्मा गांधीजी के वैचारिक आधार स्वदेश, स्वदेशी, स्वधर्म, स्वभाषा, स्वसंस्कृति, रामराज्य, ग्राम स्वराज इत्यादि को तिलांजलि दे दी गई। स्वाधीन भारत में मानसिक पराधीनता का बोलबाला है। देश को बाँटने वाली विधर्मी/विदेशी मानसिकता के फलस्वरूप देश में अलगाववाद, अतंकवाद, भ्रष्टाचार, सामाजिक विषमता आदि पाँव पसार चुकी हैं। संघ जैसी संस्थाएँ सतर्क हैं। परिवर्तन की लहर चल पड़ी है। देश की सर्वांग स्वतंत्रता अवश्यंभावी है।

सदियों पुराने एवं लंबे स्वतंत्रता संग्राम के फलस्वरूप अंततोगत्वा हमारा देश स्वाधीन हो गया। सत्ता की जिस कुरसी पर पहले अंग्रेज काबिज थे, उस पर अब भारतीय बैठ गए। गोरों के स्थान पर कालों का राज, बस इतना ही हुआ। अत: केवल मात्र सत्ताधारियों की अदला-बदली को कदाचित भी पूर्ण स्वतंत्रता नहीं कहा जा सकता। यह केवल मात्र राजनीतिक स्वाधीनता थी। पहले हम पराधीन थे, अब हम स्वाधीन हो गए। पराधीनता अर्थात् परायों के अधीन, स्वाधीनता अर्थात् अपनों के अधीन। सदियों पर्यंत बलिदान देने वाले राष्ट्रीय समाज हिंदुओं को मिला एक खंडित देश और सदियों पर्यंत भारत पर आक्रमण करनेवाले आक्रांताओं की हमलावर तहजीब के अनुयायियों को मिल गया 'पाकिस्तान'। यह कहने में कोई

भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि हिंदू समाज को सजा मिली और मुसलिम समाज को पुरस्कार।

आक्रांताओं की विजय

ऐतिहासिक संदर्भ में देखें तो यही निष्कर्ष निकलता है कि जिनके पास कुछ भी नहीं था, उन्हें तो सबकुछ मिल गया और जिनके पास सबकुछ था, उन्हें कुछ भी नहीं मिला। पाकिस्तान अर्थात् मुसलिम आक्रमणकारियों की पहली स्थायी विजय। दो विभिन्न विचारधाराओं की एक ऐसी जंग, जो पिछले 12-13 सौ वर्षों से चल रही थी, उसी की परिणति थी पाकिस्तान का निर्माण। विभाजन के तुरंत बाद पाकिस्तान के जनक मुहम्मद अली जिन्ना ने नारा दे दिया—'हँस के लिया है पाकिस्तान, लड़ के लेंगे हिंदुस्तान।'

पाकिस्तान इसी उद्देश्य हेतु आज तक लड़ता चला आ रहा है। एक मुसलिम इतिहासकार ने ठीक फरमाया था। "आठवीं शताब्दी में अर्थात् मुहम्मद बिन कासिम के सिंध पर आक्रमण के बाद जिस दिन पहले हिंदू ने इस्लाम कबूल किया था, उसी दिन भारत के विभाजन के बीज पड़ गए थे। इसका एक अर्थ यह भी है कि मुसलमान बननेवाला वह पहला हिंदू ही पाकिस्तान की नींव की पहली ईंट था।"

लार्ड माउंटबेटन का प्रभाव

खंडित भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् अंग्रेज गवर्नर लार्ड माउंटबेटन की कृपा एवं मार्गदर्शन में बनी पंडित नेहरू की सरकार ने सत्ता की बागडोर सँभाली। उधर पाकिस्तान ने तो लार्ड माउंटबेटन को घास नहीं डाली, परंतु नेहरूजी ने अपने इस मित्र तथा राजनीतिक गुरु लार्ड माउंटबेटन को जनरल से कहीं ज्यादा महत्त्व दिया। यह अंग्रेज शासक 24 मार्च, 1947 को भारत पहुँचा था तथा आजादी के बाद भी 20 जून, 1948 तक भारत में रहकर सभी महत्त्वपूर्ण फैसले करवाता रहा। उसकी यही इच्छा थी कि वह दोनों उपनिवेशों भारत एवं पाकिस्तान का संवैधानिक मुखिया बना रहे। पाकिस्तान के अँगूठा दिखाने के बाद वह भारत का भाग्यविधाता बनने में सफल हो गया। पंडित नेहरू की सहमति से वह अपने फैसले भारत की जनता पर एक तानाशाह की तरह थोपता रहा। वास्तव में 20 जून, 1948 तक लार्ड माउंटबेटन ही भारत का असली शासक बना रहा और कांग्रेस की सरकार द्वारा संवैधानिक नियमों के अनुसार इसके आदेशों का अक्षरशः पालन होता रहा।

वस्तुतः लार्ड माउंटबेटन ने स्वाधीन भारत को पूर्व की अंग्रेज सरकार के ही

पदचिह्नों पर चलाने में सफलता प्राप्त कर ली। विभाजन के पश्चात् खंडित भारत की सरकार के सभी प्रकार के रीति-रिवाजों में कुछ भी 'भारतीय' नहीं था और न ही राष्ट्रीय स्वाभिमान के इस अति महत्त्वपूर्ण विषय पर किसी को सोचने की फुरसत ही थी। 'सत्ता की भूख' के उतावलेपन में जिस तरह भारत का विभाजन स्वीकार किया गया, ठीक उसी तरह हमारे कांग्रेसी सत्ताधारी महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस, जयप्रकाश नारायण, आचार्य कृपलानी, आचार्य नरेंद्र देव, डॉ. लोहिया, पुरुषोत्तम दास टंडन जैसे राष्ट्रवादी स्वतंत्रता सेनानियों को दरकिनार करते हुए एक बार फिर अंग्रेजों द्वारा थोपी गई राजनीतिक एवं संवैधानिक व्यवस्था की लकीर के फकीर बन गए। ब्रिटिश सत्ता के कालखंड में स्वतंत्रता संग्राम के सर्वोच्च सेनापति महात्मा गांधी के उन उसूलों और सिद्धांतों को भुला दिया गया, जिन्हें आदर्श मानकर स्वतंत्रता की जंग महात्मा गांधीजी ने लड़ी थी। अंग्रेजों द्वारा फेंके गए जूठे पत्ते उठाकर चाटने में ही ये सत्ताधारी गौरव महसूस करने लगे।

कालबाह्य किए गए गांधीजी

महात्मा गांधी एक व्यक्ति अथवा नेता नहीं थे। भारतीय अंतर्मन के एक सशक्त हस्ताक्षर थे महात्माजी। 'रामराज्य' एवं 'हिंद स्वराज' जैसे आदर्श उनकी जीवनयात्रा के घोषणा-पत्र थे। स्वदेश, स्वदेशी, स्वभाषा, स्वधर्म इत्यादि विचार तत्त्वों को गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन की कार्य संस्कृति एवं उद्देश्य घोषित किया था। वे इन्हीं आदर्शों के आधार पर भारतीयों को सत्याग्रहों/आंदोलनों में भाग लेने की प्रेरणा देते रहे। महात्मा गांधीजी अंत तक प्रयास करते रहे कि 'रामराज्य' एवं 'हिंद स्वराज' जैसी भारतीय परंपराओं एवं भारत की सनातन अमर-अजर संस्कृति के आधार पर ही भारत के संविधान, शिक्षा प्रणाली, आर्थिक रचना इत्यादि का तानाबाना बुना जाए। महात्मा गांधीजी के शब्दों में—"अंग्रेज रहें, उनकी सभ्यता चली जाए, वह तो मुझे मंजूर है, परंतु अंग्रेज चले जाएँ और उनकी सभ्यता यहाँ राज करती रहे, यह मुझे मंजूर नहीं। इसे मैं स्वराज्य कदापि नहीं कहूँगा।"

महात्माजी चाहते थे कि परंपरागत भारतीय प्रशासनिक, सामाजिक, शैक्षिक, आर्थिक ताने-बाने में युगानुकूल समयोचित संशोधन करके अपनाए रखा जाए। स्वाधीन भारत की प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था को परतंत्रता पूर्व के भारत की सर्वश्रेष्ठ कार्य संस्कृति के साथ जोड़ा जाए। सनातन विश्वगुरु भारत के साथ नाता जोड़कर ही वर्तमान भारत प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सकता है। महात्मा गांधी पश्चिम के अंधे अनुकरण के घोर विरोधी थे। उनके विचारानुसार विशाल यंत्रों पर

आधारित औद्योगिक क्रांति, पश्चिम में प्रचलित चुनाव प्रणाली, पश्चिम की सभ्यता पर आधारित शिक्षा व्यवस्था तथा आर्थिक रचना भारत जैसे धर्मप्रधान एवं 75 फीसदी से ज्यादा गाँवों में रहनेवाले भारतीयों के लिए सर्वाधिक नुकसानदायक साबित होगी। गांधीजी ने नेहरू के नाम लिखे एक पत्र में कहा भी था—"आधुनिक विज्ञान का प्रशंसक होते हुए भी मैं अनुभव करता हूँ कि हमें अपने देश के प्राचीन जीवन-मूल्यों को ही आधुनिक विज्ञान के आलोक में सजा-सँवारकर अपनाना होगा।"

गांधीजी के अनुसार, ब्रिटिश शासकों ने भारत को पाश्चात्य शिक्षा, प्रशासन, संविधान तथा आर्थिक मकड़जाल में फँसा दिया था—स्वराज्य प्राप्ति के बाद यदि देश को इस विदेशी मकड़जाल से न निकाला गया तो स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं बचता।

दुर्भाग्य से पंडित जवाहरलाल नेहरू को गांधीजी के स्वधर्म, स्वभाषा, अहिंसा, अपरिग्रह इत्यादि जीवन-मूल्य स्वीकार्य नहीं थे। वे महात्माजी के सामाजिक, आर्थिक जीवन-दर्शन से भी सहमत नहीं थे। महात्मा गांधीजी गाँव को एक इकाई मानकर आर्थिक विकास की रचना में विश्वास करते थे, जबकि नेहरूजी भारतीय गाँवों की हालत से पूर्णतया अनभिज्ञ होने की वजह से शहरों के विकास को ही महत्त्व देने के लिए अपनी आर्थिक योजनाओं को अंजाम देने में जुट गए। महात्मा गांधीजी ने स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष को दो सभ्यताओं के संघर्ष के रूप में देखा था। इसीलिए गांधीजी ने 'हिंद स्वराज' में लिखा था—'कुछ लोग मेरे हिंदुस्तान को अंग्रेज बनाना चाहते हैं, परंतु वे जान लें कि हमारा हिंदुस्तान जब अंग्रेज बन जाएगा, तब वह हिंदुस्तान नहीं रहेगा, सच्चा इंग्लिस्तान बन जाएगा। यह मेरी कल्पना का स्वराज नहीं है।'

सामने आए भयानक दुष्परिणाम

महात्मा गांधीजी के सिद्धांतों, आदर्शों और कार्य-संस्कृति की अवहेलना करके कांग्रेसी सत्ताधारियों ने पाकिस्तान के अस्तित्व को 'सेटल्ड फैक्ट' मानते हुए अंग्रेजों की भारत विरोधी कुटिल चाल पर संवैधानिक मोहर लगाकर जो महापाप किया, उसका नतीजा न केवल भारत ही भुगत रहा है, अपितु सारी दुनिया पाकिस्तानी आतंकवाद का शिकार हो रही है। ब्रिटिश सत्ताधारियों द्वारा बनाए गए 1935 के संविधान के आगे-पीछे जोड़-तोड़ करके उसे भारत की जनता पर थोप दिया गया। भारतीयों को काले अंग्रेज बनाने के उद्देश्य से लॉर्ड मैकाले द्वारा अख्तियार की गई शिक्षा नीति को बनाए रखकर भारतीयों को भारतीयता से तोड़ने का क्रम जारी

रहा। भारतवासियों की जरूरतों, परिस्थितियों तथा परंपराओं की ओर ध्यान न देकर अंग्रेजों की वही साम्राज्यवादी आर्थिक नीति को यथावत् स्वीकार करके 75 फीसदी भारतीयों के पेट पर लात मार दी गई।

उपरोक्त सरकारी नासमझी और भारत की श्रेष्ठ सांस्कृतिक धरोहर को तोड़ने के भयानक दुष्परिणाम सबके सामने हैं। हमारा भारत जो स्वतंत्रता आंदोलनों के समय एकजुट हुआ था, वह अब भाषा, क्षेत्र, जाति, मजहब के आधार पर विभाजित हो गया है। पूर्व काल में जो-जो एकत्व भाव निर्माण हुआ था, वह विघटन में बदल गया। वोट की राजनीति का उदय हो गया। फलस्वरूप सर्वत्र भ्रष्टाचार का बोलबाला होने लगा। अमीर और गरीब की खाई का आकार बढ़ने लगा। वोटबैंक अस्तित्व में आ गए। अपनी साम्राज्यवादी सत्ता को चिरस्थायी बनाने के लिए भारत के गौरवशाली अतीत के इतिहास को बिगाड़ने का जो काम अंग्रेजों ने किया था, आज वही इतिहास पढ़कर हम वही काम कर रहे हैं, जो अंग्रेज करते थे।

भारतीयों की निष्ठा है अखंड भारत

अंग्रेजों के भारत छोड़ने के बाद खंडित भारत का जो हिस्सा हमारे पास रहा, उसी को भारत समझ बैठे। हम भूल गए कि हमारा 'भारतवर्ष' वर्तमान भारत से कहीं ज्यादा लंबा-चौड़ा था। 12 सदियों तक निरंतर विदेशी सत्ताओं को उखाड़ने के लिए भारतीयों ने जो संघर्ष किया, वह वर्तमान भारत के लिए नहीं था। यह ठीक है कि विशाल भारत का एक भूखंड स्वाधीन हो गया है, परंतु इससे अनेक गुना ज्यादा भारतीय भू-भाग आज भी विदेशी सत्ताओं के अधीन ही है। कांग्रेस की अंग्रेजनुमा नीतियों के कारण आज भारतमाता के सनातन अखंड स्वरूप की कल्पना भी कहीं दृष्टिगोचर नहीं हो रही। 'भारतवर्ष' के वे भू-भाग जो विदेशियों के कब्जे में हैं, उन्हें हम स्वतंत्र करवाएँगे, ऐसा विचार भी कहीं सुनाई नहीं देता। यह उन्हीं अंग्रेजी संस्कारों का परिणाम है, जिन्हें हम आज तक घसीट रहे हैं। उल्लेखनीय है कि डॉ. केशवराव बलिराम हेडगेवार ने इसी 'अखंड भारत की सर्वांग स्वतंत्रता' की प्राप्ति के लिए राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की थी। इसी सर्वांग-स्वतंत्रता के लिए संघ आज भी संघर्षरत है। संघ की 'अखंड भारतवर्ष' की परिधि में भारत का भूगोल, संविधान, शिक्षा प्रणाली, आर्थिक नीति, समाज रचना इत्यादि वे सभी क्षेत्र आते हैं, जो विदेशी सत्ताओं अथवा विदेशी संस्कारों के अधीन हैं।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वितीय सरसंघचालक पूजनीय माधवराव सदा शिव राव गोलवलकर के एक भाषण के एक लघु अंश से भारत माता के अखंड

स्वरूप को समझा जा सकता है—"भारत या हिंदुस्थान नाम से परिचित विस्तृत भूमिखंड हमारा आधार है, परंतु अपनी इस मातृभूमि का हमें आज जो चित्र देखने को मिल रहा है, वह कटा हुआ है। अति प्राचीन काल से जिस स्वरूप को हमने अपने अंत:करण में धारण किया है और वंश-परंपरा से जिसकी हम लोग उपासना करते आए हैं। वह चित्र अत्यंत विशाल है। उत्तर में हिमालय की समस्त शाखाओं-उपशाखाओं से घिरे हुए भूप्रदेश से लेकर दक्षिण महासागर तक और उसके छोटे-बड़े द्वीप-समूहों को मिला करके जो इस पृथ्वी का अंश बनता है, वही अपनी इस पवित्र भारत-भूमि का यथार्थ स्वरूप है। हिमालय की मुख्य श्रेणियों को पार करके उत्तर में जाने पर कैलाश और मानसरोवर हैं। मानसरोवर से निकली हुई ब्रह्मपुत्र नदी दक्षिण की ओर मुड़कर भूमि को उर्वर बनाती है। इन पवित्र क्षेत्रों को क्या कोई अपने देश की सीमा से बाहर रखने की कल्पना कर सकता है? त्रिविष्टप, जिसे आज तिब्बत कहा जाता है, अपनी मातृभूमि का हिस्सा है। उसी प्रकार गंधार तो पुराना गंधार है ही। जहाँ तुरग यानी अच्छे घोड़े मिलते थे, वही तुरगस्थान आज तुर्कस्तान है। ईरान तो अपना आर्यान ही है और अफगानिस्तान पुराना उपगण स्थान है। इस प्रकार अपनी मातृभूमि का विस्तार तथा उसका पूर्ण रूप ध्यान में रखकर ही अपनी भारत-भूमि का चिंतन करना चाहिए। बौद्ध काल से—पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एक राष्ट्र' के रूप में जिस मातृभूमि की वंदना की गई है, वही आज भी—

गंङ्गे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।
नर्वदा सिन्धु कावेरी जलेस्मिन सन्निधिं कुरु।।

मंत्रोच्चारण करके जिसका स्मरण किया जाता है, वह हमारी हिंदू भूमि ही है। "अखंड-अविभाज्य हमारी मातृभूमि यह भारतमाता है।"

यह भी एक विडंबना ही है कि अधिकांश विद्वान् एवं साधारण भारतीय जन अखंड भारत को हिंदुस्थान, पाकिस्तान तथा बँगलादेश का समूह ही मानते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि 'अखंड भारत' मात्र एक राजनीतिक अवधारणा न होकर, भारतवंशियों की निष्ठा एवं श्रद्धा है। अखंड भारत के प्रति भारतीयों की श्रद्धा 1947 में हुए भारत विभाजन के बाद उत्पन्न नहीं हुई। हमारे प्राचीन साहित्य में भारत, भारती, देवतात्मा हिमालय, चक्रवर्ती क्षेत्र इत्यादि शब्दावली का बार-बार इस्तेमाल किया गया है। हमारी सनातन परंपरा में प्रत्येक भारतीय के प्रात: उठते ही भारतमाता की चरणरज को माथे पर लगाने की परंपरा थी जो कामोबेश आज भी मौजूद है।

समुद्रवसने देवी पर्वतस्तन मंडले,
विष्णुपत्नी नमस्तुभ्यम्
पादस्पर्शं क्षमस्वमेव

अर्थात् समुद्र में वास करनेवाली देवी (भारतमाता) पर्वतमंडल जिसके पवित्र स्तन हैं, ऐसी विष्णुपत्नी माता को मैं अपने पाँव लगा रहा हूँ, मुझे क्षमा करो। अपनी अखंड मातृभूमि की यह उच्च कोटि की वंदना है।

भारतमाता का अखंड स्वरूप

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पाँचवें सरसंघचालक श्री सुदर्शनजी ने प्राचीन भारतीय ग्रंथों का अध्ययन करने के बाद एक लेख में कहा था—"अपने पुराणों एवं महाकाव्यों में अपने देश के विस्तार का जो वर्णन किया गया, उसमें तिब्बत की उत्तरी सीमा से लेकर समुद्र तक सारा क्षेत्र आ जाता है, जिसमें अफगानिस्तान, तिब्बत, सिक्किम, भूटान, मलेशया, सिंगापुर तथा लंका आदि सभी क्षेत्रों का समावेश हो जाता है। अंग्रेजों ने इन सारे भू-प्रदेशों पर अपने साम्राज्य का विस्तार किया था तथा तिब्बत को उन्होंने मध्यवर्ती राज्य (बफर स्टेट) के रूप में रखा था। तिब्बत की डाक एवं पुलिस व्यवस्था भारत से ही संचालित होती थी।" महाकवि कालीदास ने देवात्मा हिमालय का वर्णन अपने काव्य में इस प्रकार किया है—

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवत्मता
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधीमवगाह्य
स्थितिः पृथिव्या इव मानदण्ड॥

अर्थात् उत्तर दिशा में देवात्मा पर्वतराज हिमालय खड़ा है। पूर्व व पश्चिम में समुद्रपर्यंत अपने बाहु पसारकर पृथ्वी का मानो मानदंड बना हुआ है। विष्णु पुराण में एक श्लोक में तो 'भारत एवं भारती' शब्द स्पष्ट रूप से मिलते हैं।

उत्तरं यत्समुद्रस्य दिमाद्रैश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम, भारती यत्र सन्तति।।

समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो वर्ष (विशाल क्षेत्र) स्थित है, उसका नाम भारत है और उसकी संतति/संतान को भारती कहते हैं। भारत एक चक्रवर्ती देश के नाम से भी जाना जाता था, आचार्य चाणक्य ने अपने कौटिल्य अर्थशास्त्र के नवम अधिकरण के 135-136 प्रकरण में चक्रवर्ती क्षेत्र की व्याख्या निम्न सूत्र से की है—

देशः पृथिवी! तस्यां
हिमवत्स समुद्रन्तर मुदीचीनं
योजन सहस्र परिमाणं तिंचक चक्रवर्ती क्षेत्रम्

अर्थात् हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्रपर्यंत, पूर्व से पश्चिम दिशा में एक हजार योजन तक फैला हुआ भू-भाग चक्रवर्ती क्षेत्र है। यह श्लोक उत्तर एवं दक्षिण की सीमाओं के साथ-साथ पूर्व पश्चिम के विस्तार को भी स्पष्ट करता है। अपने प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन से एक ध्रुवसत्य स्पष्ट होता है कि भारत एक भूगोल भी है, एक राष्ट्र भी है। राष्ट्रवादी इतिहासकार श्री देवेंद्र स्वरूप लिखते हैं—"क्या हम ब्रिटिश भारत की अखंडता चाहते हैं या सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेनसांग के समय के भारत की, जिसमें आज का अफगानिस्तान और मध्य एशिया का ताशकंद-समरकंद क्षेत्र भी शामिल था? या उसके भी पहले भारत की, जिसे पुराणों में नवद्वीपवती बोला गया है। जिसमें श्रीलंका, बर्मा, थाईलैंड, जावा, सुमात्रा, बाली, मलेशिया, फारमूसा और फिलीपीन जैसे अनेक अंग थे।"

अखंड भारत के विशाल संस्कृतिनिष्ठ विचारतत्त्व को न समझानेवाले नेताओं ने जिस पाकिस्तान के निर्माण पर अपनी मोहर लगाई थी, वही पाकिस्तान आज आतंकवाद के सैकड़ों अड्डों एवं आतंकी सरगनाओं को पाल-पोस रहा है। आज तो भारत में भी कई और पाकिस्तान बनाने के षड्यंत्र रचे जा रहे हैं। हमारा प्राचीन राष्ट्र इस प्रकार के हजारों जख्मों से त्रस्त है। इन जख्मों के स्थायी इलाज के लिए मरहम की जरूरत है, वह है अखंड भारत। भारत की अखंड शक्ति ही संपूर्ण विश्व में व्याप्त विखंडन की प्रवृत्ति का सामना कर सकती है। "अखंड भारत देश की मात्र भौगोलिक एकता का ही परिचायक नहीं, अपितु जीवन के भारतीय दृष्टिकोण का भी द्योतक है, जो अनेकता में एकता के दर्शन करवाता है। उसकी रक्षा के लिए भारत लाखों जानें कुरबान कर चुका है। भारत की यह उत्कृष्ट आकांक्षा है कि वैमनस्य का घिनौना खेल खत्म हो, भारत एक अखंड शक्ति के रूप में खड़ा हो।" राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इसी अखंड शक्ति को प्राप्त करने के लिए संघर्षरत है।

संविधान : एकत्व का धरातल

किसी भी स्वाधीन देश के लिए उसका संविधान एक ऐसा पवित्र ग्रंथ माना जाता है, जो उस देश की विविधताओं में एकत्व स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। संविधान ही देश की विभिन्न जातियों, मजहबों, क्षेत्रों एवं भाषाओं को एक राष्ट्रीय कवच प्रदान करके अलगाववाद, आतंकवाद, नक्सलवाद, भ्रष्टाचार,

राजनीतिक अव्यवस्था जैसी समस्याओं को न केवल सुलझाने अपितु इनको जड़मूल से समाप्त करने की शक्ति भी प्रदान करता है।

अनेक विद्वानों ने समय-समय पर अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि "हमारा संविधान भारत के उज्ज्वल अतीत, भारत की प्राचीन संस्कृति और सामाजिक/धार्मिक परंपराओं के अनुकूल हो। जल्दबाजी में बनाए गए इस संविधान में 1935 में बनाए गए अधिकांश अधिनियमों को यथावत् रख दिया गया। भारत के प्राचीन संवैधानिक ढाँचे तथा सामाजिक अवधारणाओं का लेशमात्र भी अध्ययन न करके अमेरिका, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, कनाडा एवं आयरलैंड के संविधानों का थोड़ा-बहुत अध्ययन किया गया और विश्व का संभवतया सबसे लंबा संविधान तैयार कर दिया गया। यद्यपि राष्ट्रभाषा, राष्ट्रगान, राष्ट्रध्वज, देश की विविधता इत्यादि विषयों पर चर्चा अवश्य हुई, परंतु अपने राष्ट्र की संस्कृति पर कोई बहस नहीं हुई। फलतः हमारा संविधान पश्चिम की संस्कृति की जकड़न से बच नहीं सका।"

"इस संविधान में संसद् सदस्यों एवं विधानसभाओं के सदस्यों के लिए शिक्षा का कोई भी मापदंड तय नहीं किया गया। इस संविधान में चुनाव प्रणाली वही रखी गई, जो इंग्लैंड की 'वेस्टमिंस्टर प्रणाली' थी, जिसमें वही जीता माना जाता है, जिसे सर्वाधिक मत मिले हों। मत प्रतिशत पर ध्यान नहीं दिया गया—'अंग्रेजों ने यह व्यवस्था उनके अपने देश में पिछले डेढ़ सौ वर्षों में विकसित की थी, जो वहाँ सफल इसलिए हुई कि उस छोटे से देश में अधिक विविधता थी ही नहीं, परंतु उसी विदेशी व्यवस्था को भारत जैसे विशाल देश में जहाँ जाति-पाँति, पंथ-उपपंथ, क्षेत्र-उपक्षेत्र तथा भाषा-उपभाषा जैसी विविधता हो, लागू करना उचित कैसे कहा जा सकता है। इस प्रणाली ने अपने देश में राजनीतिक अव्यवस्था, वैमनस्य, संघर्ष एवं भ्रष्टाचार को ही बढ़ाया है।"

राष्ट्रवादी इतिहासकार एवं भारतीय संविधान के मर्मज्ञ ज्ञाता डॉ. सतीश मित्तल लिखते हैं—"यह कटु सत्य है कि भारतीय संविधान भारतीय संस्कृति, चिंतन, दर्शन तथा ऐतिहासिक अनुभवों पर नहीं बनाया गया। इसकी जड़ें भारत की संस्कृति एवं अध्यात्म में न होने के कारण व्यवहार में इतना कारगर साबित न हुआ। संविधान भारत की हजारों साल पुरानी संस्कृति से कोई लाभ नहीं उठा पाया। अनेक भारतीयों तथा प्रबुद्ध विदेशियों को लगता है कि यह भारत का संविधान हो ही नहीं सकता। संविधान में कहीं भी नाम के लिए भारतीय संस्कृति, धर्म, नैतिकता, आध्यात्मिकता अथवा राष्ट्र शब्द तक का भी प्रयोग नहीं हुआ। जो अतीत के भारत की विश्व को प्रमुख देन है।"

संविधान विशेषज्ञ मेहरचंद महाजन ने इस संविधान को अनेक कमियों का दस्तावेज बताकर इसके पूर्ण संशोधन की माँग की थी। समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण ने लिखा था—"यह संविधान भारत की मिट्टी से पैदा नहीं हुआ। पश्चिम की सीधी नकल है यह।"

समाज को बाँटनेवाली जनगणना प्रणाली

आज हमारी जनगणना नीति ब्रिटिश सत्ताधारियों द्वारा बनाई नीति की कार्बन कॉपी है। इस नीति ने राष्ट्रवाचक शब्द हिंदू को धर्म की परिधि में धकेल दिया है। इसके दुष्परिणाम स्वरूप भारतीयता के प्रतीक समानार्थी शब्द हिंदुत्व को ईसाइयत एवं इसलाम की पंक्ति में खड़ा कर दिया। इस जनगणना प्रणाली ने विशाल हिंदू समाज को भी टुकड़ों में बाँटने का कार्य सफलतापूर्वक कर दिखाया। "हिंदुओं की सीमाओं को छोटा करना शुरू कर दिया। जनगणना में आदिवासियों के लिए अलग श्रेणी बनाई गई। फिर सिक्खों को अलग कर दिया गया। उसके बाद जैनियों और बौद्धों को भी अलग कर दिया गया। सन् 1891 में जनगणना आयुक्त जे.ए. बैंस से पूछा गया कि हिंदू कौन है तो उन्होंने कहा कि सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन, ट्राईबल और छोटी जातियों को निकालने के बाद जो बचता है, वह हिंदू है। देश में आज जो भी सामाजिक विखंडन की तसवीर नजर आ रही है, वह इसी जनगणना प्रणाली का नतीजा है।

भारत में अपना शासन बनाए रखने के लिए अंग्रेजों ने जो राजनीतिक, सामाजिक तथा संवैधानिक व्यवस्थाएँ हमारे समाज पर थोपी थीं, स्वाधीनता के बाद भी हमने उन व्यवस्थाओं को बिना सोचे-समझे अपना लिया। परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक, दलित तथा आदिवासी वर्ग बनकर अपने मूल समाज से कट गए। इस व्यवस्था की अनेकविध जटिलताओं के कारण भारतीय समाज में जड़ जमा चुके अल्पसंख्यकवाद, अलगाववाद तथा अंधी फिरकापरस्ती के दुष्परिणामस्वरूप आज न तो कश्मीर में आतंकी फसाद की जड़ धारा 370 हट रही है और न ही समान नागरिक संहिता जैसे राष्ट्रहितकारी कानून अस्तित्व में आ रहे हैं।

इस संवैधानिक व्यवस्था का सहारा लेकर एक विशेष समुदाय राष्ट्रगान, वंदे मातरम् तथा गो-संरक्षक जैसे राष्ट्रीय स्वाभिमान से जुड़े विषयों को भी अपनी मजहबी संकीर्णता के दायरे में तौल रहा है। यही कट्टर अल्पसंख्यकवाद आगे चलकर राष्ट्रवाद पर हावी होकर अलगाववाद की ओर रुख कर लेता है। गो-रक्षा, रामराज्य, सामाजिक समरसता इत्यादि मुद्दे जो स्वतंत्रता आंदोलन की प्रेरणा एवं

आधार रहे, वही सब अब सांप्रदायिकता को बढ़ावा देनेवाले बताए जा रहे हैं। यहाँ तक कि भारतमाता को डायन, पुलिस के हटने पर हिंदुओं का एक दिन में सफाया करने की धमकियाँ देनेवाले, शरीर पर छुरी चलने के बाद भी 'भारत माता' की जय नहीं ऐसा कहनेवाले लोग आज विधायक, सांसद तथा मंत्री तक बन रहे हैं। कानून की गिरफ्त में फँसे हुए घोर अपराधी भी सत्ता का सुख भोग सकते हैं। 'पाकिस्तान जिंदाबाद' कहने वालों को किसी कानून की गिरफ्त में लिया नहीं जाता।

संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकारों की दुहाई देकर नकली साधु-बाबाओं ने अपने विशालकाय आश्रमों में बलात्कार, कत्लोगारत, कालाधन, जमाखोरी के अड्डे खोल रखे हैं। ताज्जुब तो तब होता है, जब वोट और कुरसी के लोभी राजनीतिक नेता यह सबकुछ जानते हुए भी इन चरित्र भ्रष्ट बाबाओं के सामने दंडवत प्रणाम करने में जरा भी शर्म महसूस नहीं करते। देश की धर्मपरायण जनता को मूर्ख बनाकर अपनी दौलत के खजाने भरनेवाले इन स्वामी बाबाओं की संख्या दिनोदिन बढ़ती जा रही है। इस तरह के समाजघातक, देशविरोधी और राष्ट्रद्रोही अनसरों पर चलाए जानेवाले मुकदमे वर्षों चलते रहते हैं। जेलों में इन्हें सभी प्रकार की सुविधाएँ मिलती हैं। इसी तरह भ्रष्टाचार के आरोपी सैकड़ों नेताओं में से मात्र दो-चार को ही सजा मिली होगी। सच्चाई तो यह है कि इन भ्रष्टाचारियों, बलात्कारियों, जमाखोरों और देशद्रोहियों ने देश की कानून व्यवस्था को अपनी जेब में डाल रखा है।

किसी भी देश का संविधान इतना भी कठोर नहीं होना चाहिए कि जनमानस की आवश्यकता के अनुसार उसमें ठोस परिवर्तन ही न किया जा सके। अपने देश का संविधान लचीला है। यही वजह है कि 1952 से लेकर आज तक अनेक संशोधन हो गए हैं। संविधान, कानून व्यवस्था की एक अतिश्रेष्ठ व्यवस्था का नाम होता है। यह कोई वेद, रामायण, कुरआन, बाईबल जैसा धार्मिक ग्रंथ नहीं होता, जिसमें संशोधन नहीं किया जा सकता। अतः भारत की वर्तमान समस्याओं के समाधान के लिए यदि संविधान में आवश्यक संशोधन करने का विचार किया जाए तो गलत नहीं होगा। संविधान में परिवर्तन अथवा संशोधन को राजनीतिक चश्मे से देखना समाज एवं राष्ट्र के लिए घातक होगा।

आरक्षण के साथ सम्मान भी चाहिए

हमारे संविधान में सदियों से छुआछूत की जानलेवा बीमारी से पीड़ित हमारे पिछड़े भाइयों को आगे बढ़ने का अवसर देने के लिए आरक्षण व्यवस्था की गई है।

सामाजिक समरसता और संघ

कल्पना कीजिए, जब एक-दो कथित दलित नेताओं ने 'तिलक तराजू और तलवार, इनको मारो जूते चार' का नारा लगाया था तो समाज में समरसता पैदा हुई थी या विभिन्नता? इन लोगों की मानसिकता में कहीं राष्ट्रीय एकता, सामाजिक सौहार्द अथवा 'दलितोत्थान' तो लेशमात्र भी दिखाई नहीं देता, वहाँ तो बस सत्ता को हथियाना ही एकमात्र आदर्श राजनीति है। इस संदर्भ में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की कार्यप्रणाली को समझकर इस 'सामाजिक समरसता' का ठोस रास्ता निकाला जा सकता है। संघ की शाखाओं, शिविरों, सम्मेलनों तथा बैठकों में कहीं भी 'दलित' शब्द का इस्तेमाल नहीं होता। संघ के कार्य-वृत्त में यह कभी जानकारी नहीं दी जाती कि दलित कितने थे? सिख, जैन, कितने थे? ये सभी विशाल हिंदू समाज के विभिन्न अंग हैं। इन सबका सर्वांगीण विकास अर्थात् सर्वांग स्वतंत्रता ही संघ का ध्येय है। संघ के अनुसार—"यह समस्या हिंदू समाज की जाति-व्यवस्था की विकृति में से पैदा हुई है। अतः तथाकथित उच्च जातियों को अपने पूर्वजों की भूल का प्रायश्चित करने के लिए और अपने हिंदू समाज के दुर्बल वर्गों को अपने समकक्ष लाने के लिए त्याग व तपस्या का मार्ग अपनाना होगा। इसके लिए सशक्त नैतिक आंदोलन अथवा सामाजिक मुहिम का सर्जन करना होगा।"

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ अपने पिछड़े भाइयों के लिए आरक्षण का कभी भी विरोधी नहीं रहा। यह आरक्षण व्यवस्था जारी रहनी चाहिए। इसे संसार की कोई भी ताकत रोक नहीं सकती। परंतु संघ इस कार्य में भी प्रयासरत है कि इस गरीब एवं पिछड़े वर्ग को पूरा सम्मान भी मिलना चाहिए। इनके साथ मिलकर तीज-त्योहार मनाना, इन बस्तियों में सेवा प्रकल्प चलाना, संघ के कार्यक्रमों में इनकी भागीदारी सुनिश्चित करना इत्यादि सब काम संघ अपनी शाखाओं के माध्यम से कर रहा है। रक्षाबंधन, दीपावली इत्यादि त्योहार सामूहिक रूप से संपन्न किए जाते हैं। अपने इस आर्थिक दृष्टि से दुर्बल समाज को गले लगाने का काम संघ जैसे किसी गैर-राजनीतिक हिंदू मंच से ही किया जा सकता है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के द्वारा समाज-सेवा के जो विभिन्न प्रकल्प चल रहे हैं, उनमें 'सेवा बस्ती' नामक प्रकल्प गरीब एवं पिछड़ी बस्तियों में निस्स्वार्थ सेवा भाव से काम कर रहा है। संघ समाज के दुर्बल, पिछड़े एवं उपेक्षित वर्गों की सम्मानजनक ढंग से सेवा करता है। वनवासी हो या पिछड़ी जातियाँ, किसान हो या मजदूर, हर क्षेत्र में संघ के स्वयंसेवक अपनी कार्य-साधना के द्वारा सामाजिक समरसता की मशाल को थामे हुए आगे बढ़ रहे हैं।

स्वदेशी शिक्षा प्राणाली क्यों नहीं ?

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश की कोई अपनी राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो, इस पर न तो कभी कोई गंभीर प्रयास हुआ और न ही कोई ठोस नीति व्यवहार में आ सकी। अंग्रेजों द्वारा काले अंग्रेज एवं दफ्तरी कलर्क पैदा करने के लिए जिस शिक्षा प्रणाली को भारत पर थोपा गया था, उसी की लकीरें पीटने को भारत की शिक्षा नीति बना दिया गया। जिस शिक्षा नीति ने देश के गौरवशाली अतीत को नकार दिया, हमारे राष्ट्रीय महापुरुषों को कायर एवं दहशतगर्द बताया, हिंदू आर्यों को मुगलों, यमनों तथा अंग्रेजों की तरह बाहर से आए हुए प्रचारित किया, हमारे सनातन साहित्य को गड़रियों का इतिहास नाम दिया, हमारी गौरवशाली सामाजिक एवं धार्मिक परंपराओं को कुंठाग्रस्त कुरितियों की पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया, इस प्रकार की साम्राज्यवादी एवं भारतीय संस्कृति विरोधी शिक्षा प्रणाली को स्वाधीन भारत में बदलने का प्रयास क्यों नहीं किया गया? अंग्रेजों ने शिक्षा के माध्यम से भारतीय संतानों को अपने उज्ज्वल अतीत से काटकर अपने ईसाई मत को भारत में थोपने का अभियान चलाया, परंतु हम उस शिक्षा प्रणाली के स्थान पर स्वदेशी शिक्षा प्रणाली लागू करके अपनी संतानों को पुनः अपने देश की अमर-अजर संस्कृति से क्यों नहीं जोड़ सके?

डॉ. सतीश चंद्र मित्तल के अनुसार—"भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा का स्वरूप पाश्चात्य तथा यूरोपीय मॉडल पर ही आधारित रहने दिया गया। इससे अतीत से चली आई शिक्षा का दुर्लक्ष्य हुआ तथा आत्मविस्मृति को स्थान मिला। शिक्षा में भौतिकवाद तथा पाश्चात्य अंधानुकरण को बढ़ावा मिला। शिक्षा राजनीति की दासी बन गई। शिक्षा का व्यापारीकरण, व्यवसायीकरण तथा बाजारीकरण हुआ। परिणामस्वरूप अनेक कुरीतियाँ, चारित्रिक पतन और सांस्कृतिक ह्रास तेजी से बढ़े। शैक्षणिक जगत् में विश्व के प्राचीन काल से ही भारत का वर्चस्व रहा है। भारतीय शिक्षण चिंतन का आधार धर्म, आध्यात्मिकता अथवा नैतिक जीवन-मूल्यों का संरक्षण तथा संवर्धन रहा है। गुरु-शिष्य के गहरे संबंध, सामूहिक तथा परिश्रमी जीवन इसका मार्ग रहा है। शिक्षा अथवा विद्या का जीवन के चार पुरुषार्थों, धर्म के दस लक्षणों, संस्कारों की विस्तृत योजना को जीवन-मूल्यों की शिक्षा का अंग माना है। पठानों तथा मुगलों के साथ अनेक संघर्षों एवं कष्टों के बाद भी भारतीय पाठशालाओं तथा विद्या केंद्रों में जीवनमूल्यपरक शिक्षा अक्षुण बनी रही।"

अंग्रेजों की हिंदुत्व विरोधी मंशा

हमारे स्वाधीनता आंदोलन की कुछ विशेष प्रेरणाओं में से एक यह भी थी—अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली से छुटकारा पाकर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का आविष्कार करना। यह भी कहा जाता था कि ब्रिटिश राज को समाप्त किए बिना भारत विदेशी शिक्षा प्रणाली की गुलामी से आजाद नहीं हो सकता। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली भारतीय धर्म एवं संस्कृति के प्रति अज्ञान व अनास्था पैदा करती है। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के जनक लॉर्ड मैकाले के शब्दों में—"रक्त और रंग से भारतीय होंगे, किंतु रुचि, विचार और ज्ञान की दृष्टि से अंग्रेज होंगे और जो हम शासकों और हमारे करोड़ों प्रजाजनों के बीच द्विभाषियों का काम करेंगे।" इसी तरह एक अंग्रेज विद्वान् चार्ल्स ट्रैवेलियान ने अपनी पुस्तक में लिखा था—"अंग्रेजी साहित्य द्वारा प्रदत्त प्रेरणा भारत के साथ इंग्लैंड का रिश्ता मजबूत करने में सहायक होगी। हमारे साहित्य से परिचित हो जाने के बाद भारतीय नवयुवक हमें विदेशी नहीं मानेंगे। हमारी पद्धति से शिक्षा प्राप्त कर, समान उद्देश्य में रुचि लेकर वे हिंदू से ज्यादा अंग्रेज नजर आएँगे।" एक कथित उदारवादी अंग्रेज ईसाई विद्वान् एलफिंस्टन ने तो यहाँ तक कह दिया कि "मेरा पक्का विश्वास है कि भारतीयों के धर्मांतरण का सबसे परिणामकारी उपाय उन पर अपने विचारों को थोपना है। कानून एवं नैतिकता के क्षेत्र में इस देश के यूरोप से पीछे रह जाने का मुख्य कारण मैं हिंदू धर्म को मानता हूँ और उनके सुधार की इस बाधा (हिंदुत्व) के हटने पर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।"

अतः यह स्पष्ट हुआ कि ब्रिटिश शासकों का उद्देश्य अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली को समस्त भारतीयों को शिक्षित करके उसे एक अच्छा नागरिक बनाने में कतई नहीं था। हिंदू धर्मावलंबियों का धर्मांतरण करके उन्हें ईसाई एवं काले अंग्रेजों की एक ऐसी जमात तैयार करना, जो अंग्रेजों की सत्ता को मजबूती देने के पाए बन सके। लॉर्ड मैकाले ने 1850 में अपने पिता को लिखे एक पत्र में कहा था—"अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण करनेवाला कोई भी हिंदू अपने धर्म के प्रति सच्ची निष्ठा नहीं रख सकता।" अंग्रेजी शिक्षा का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ कि भारत का राष्ट्रीय समाज कई हिस्सों में बँट गया। अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की राजनीति को सफल बनाने में लॉर्ड मैकाले की शिक्षा प्रणाली ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। शिक्षा के माध्यम से अनेक विवाद खड़े कर दिए गए। आर्य बनाम द्रविड़, हिंदू बनाम सिक्ख तथा हिंदू बनाम आदिवासी के दुष्प्रचार ने अपना ऐसा असर दिखाया, जो अभी तक प्रभावित चला आ रहा है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की आवश्यकता

अंग्रेजों ने ब्रिटिश साम्राज्यवादी व्यवस्थाओं वैधानिक, प्रशासनिक, शैक्षणिक, न्यायिक इत्यादि को भारत में जमाने के उद्देश्य से एक ऐसा शिक्षातंत्र खड़ा कर दिया, जिसने यूरोपीय विचारों, संस्थाओं और जीवन-शैली को भारत में अपना एक विशेष स्थान बनाने में बड़ी भारी भूमिका अदा की। अंग्रेजों द्वारा भारत पर थोपी गई इस प्रकार की अराष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के विरोध में स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, महामना मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी इत्यादि संतों/महात्माओं ने राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन खड़ा करने का प्रयास किया। डी.ए.वी. आंदोलन, शांति निकेतन की स्थापना, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना, विद्यापीठों का उद्भव इत्यादि शिक्षण संस्थानों का उद्देश्य भारतीयों को भारतविरोधी शिक्षा के चंगुल से बचाना था, परंतु यह सभी प्रयास अखिल भारतीय स्तर पर अंग्रेजी शिक्षा का सशक्त विकल्प नहीं खड़ा कर सके। काशी हिंदू विश्वविद्यालय सहित ये सभी शिक्षा संस्थान आज भी चल रहे हैं। आज भी ये सभी संस्थान अपने संस्थागत दायरे में रहते हुए काम तो कर रहे हैं, परंतु किसी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अभाव में ये संस्थान भी उसी बहाव का शिकार हो चुके हैं, जिसकी शुरुआत स्वाधीनतापूर्व के कालखंड में हुई थी।

अपने देश के लिए जब तक कोई एक ठोस शिक्षा नीति नहीं बनती, तब तक अंग्रेजों की लीक पर चलते रहना पड़ेगा। अंग्रेजों के पूर्व भारत की मिट्टी में से उपजी स्वदेशी शिक्षा प्रणाली तो दूरदराज के ग्रामीण क्षेत्रों तक फैली हुई थी, उसके व्यवस्था आधार पर जब तक शोध नहीं होता, तब तक लॉर्ड मैकाले की शिक्षा प्रणाली से छुटकारा नहीं मिल सकता। हमें यह भी देखना होगा कि हमारे देश के वर्तमान सामाजिक परिवेश के विभिन्न स्वरूपों के मद्देनजर ऐसी कौन सी राष्ट्रीय शिक्षा नीति हो सकती है, जो सभी जातियों, मजहबों, क्षेत्रों में सामंजस्य उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध हो सके। इसके भी पहले हमें यह भी सुनिश्चित करना पड़ेगा कि अपनी स्वदेशी राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक रचना के लिए किस तरह के संस्कारित मनुष्य चाहिए। शिक्षण संस्थाओं के व्यवस्थापकों, शिक्षा देनेवाले अध्यापकों और व्यवस्था को चलाने वाले संचालकों को भी 'शिक्षा का राष्ट्रीय लक्ष्य' इसकी पूरी जानकारी चाहिए। इसके लिए भारत की उस सनातन शिक्षा प्रणाली का गहरा अध्ययन जरूरी है, जिसको नष्ट करके अंग्रेजों ने शिक्षा जगत् में अपना वर्चस्व कायम किया था। सर्वविदित है कि जिस समय अंग्रेजों ने भारतीय

शिक्षा प्राणाली को तहस-नहस करने की योजना बनाई थी, उस समय इंग्लैंड की अपनी शिक्षा प्रणाली पूरी तरह अविकसित एवं अपूर्ण थी।

शिक्षा का उद्देश्य 'मनुष्य-निर्माण'

उस समय भारत के प्रत्येक गाँव में एक पाठशाला थी। एक अंग्रेज कलक्टर की रिपोर्ट कहती है—"भारत में विद्यारंभ की आयु पाँच वर्ष है और प्राय: वे 12-14 की आयु तक विद्याध्यन करते रहते हैं। जो धर्मशास्त्र, तर्क, मीमांसा आदि पढ़ते हैं, वे 15 वर्ष की आयु से प्रारंभ करके तब तक पढ़ते रहते हैं, जब तक वे उस विज्ञान में पूर्णता प्रवीण नहीं हो जाते, या जब तक वे किसी धंधे-व्यापार में नहीं लग जाते।" "भारत की देशी शिक्षा प्रणाली शास्त्रों के अनुसार निर्मित थी, जिसमें धार्मिक कर्तव्यों एवं दैनंदिन जीवन के समस्त व्यवहार को उदात्त बनाया जाता था। ग्राम सभाओं के अस्तित्व के कारण न केवल नागरिक सेवा, अपितु कराधान व न्याय व्यवस्था भी जनता के हाथ में ही रहती थी। ये ग्राम सभाएँ समाज के सभी वर्गों में शिक्षा के प्रसार में पूरी-पूरी सहायता भी करती थीं।" अंग्रेज विद्वानों ने यह भी स्वीकार किया है कि भारत में शिक्षा प्रणाली की सफलता का मुख्य श्रेय यहाँ के अध्यापक वर्ग को जाता है। भारतीय अध्यापकों के लिए अध्यापन कार्य मात्र जीवकोपार्जन का साधन न होकर एक पुनीत राष्ट्रीय कार्य होता था। भारतीय अध्यापक बहुत विवेकशील तथा नीति दर्शन, राष्ट्रीय नियमों, संयम इत्यादि में परांगत होते थे। "भारत के वस्त्र शिल्पियों की जैसी ख्याति है, वैसी ही प्रशंसा यहाँ के आचार्यों एवं गुरुओं के बारे में भी उचित है, वे अपनी अस्थियों से देश की कीर्ति की दीपशिखा जलाए रखते थे।"

वर्तमान भारत को एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की आवश्यकता है, जो 'मनुष्य निर्माण' में सार्थक हो। स्वदेशी, स्वधर्म, स्वभाषा को शिक्षा प्रणाली का आधार एवं उद्देश्य बनाकर ही यह समस्या हल हो सकती है। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय चरित्र का विकास, बुद्धि का विकास, मानसिक बल की वृद्धि, आत्मविश्वास में वृद्धि होना चाहिए। राष्ट्रीय इतिहास, राष्ट्रीय संस्कृति पर आधारित संस्कार व्यवस्था शिक्षा प्रणाली का महत्त्वपूर्ण भाग होगा, तभी स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद, महामना मदनमोहन मालवीय, महर्षि अरविंद, रवींद्रनाथ टैगोर, महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, विपिन चंद्र पाल जैसे राष्ट्र-पुरुषों के द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा में किया हुआ बीजारोपण एक विशाल शैक्षणिक उद्यान के रूप में विकसित होगा। अन्यथा हम भारतीय लॉर्ड

मैकाले की भारत एवं भारतीयता को तहस-नहस करनेवाली शिक्षा की लकीरों को पीटते रहेंगे और अंग्रेजों की ही भाँति काले अंग्रेज पैदा करते रहेंगे।

सर्वांग विकास के लिए स्वदेशी अर्थ-रचना

जब हम भारत की सर्वांगीण स्वतंत्रता की बात करते हैं तो यह नहीं भूलना चाहिए कि भूगोल, संविधान, शिक्षा प्रणाली की स्वतंत्रता के साथ देश के विकास के लिए आर्थिक रचना की स्वतंत्रता भी बहुत जरूरी होती है। भारतीय दर्शनशास्त्र के अनुसार मानव का उद्देश्य इस लोक में सुख प्राप्त करना एवं परलोक में मोक्ष की प्राप्ति है। बिना स्वतंत्र आर्थिक रचना के परम सुख के लिए आवश्यक साधन नहीं जुटाए जा सकते। साधारण भाषा में कहा जाता है कि 'भूखे भजन न होय गोपाला'। शास्त्रीय भाषा के अनुसार 'शरीर माध्यम खलु धर्म साधनम्', अर्थात् धर्म की साधना के लिए शरीर एक माध्यम है, जिसका स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। अतः अपने देश के सभी शरीर अर्थात् 125 करोड़ भारतवासी अपने स्वस्थ शरीर के साथ नैतिक साधनों से अर्थोपार्जन करते हुए परमानंद प्राप्त करें, इसके लिए एक ऐसी स्वदेशी अर्थ-रचना की आवश्यकता रहती है, जो विदेशी जकड़न से पूरी तरह मुक्त हो। भारत की सर्वांग स्वतंत्रता के लिए स्वदेश, स्वदेशी, स्वधर्म आधारित आर्थिक रचना अगर नहीं होगी तो अनैतिकता, भ्रष्टाचार, सामाजिक वैमनस्य मुँह बाए खड़े हो जाएँगे।

भारतीय धर्मशास्त्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि मनुष्य, परिवार, समाज, देश एवं राष्ट्र को स्वस्थ एवं स्वतंत्र रखने के लिए चार पुरुषार्थों का अभ्यास करना चाहिए। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों का समन्वय ही सुखी समाज का आधार होता है, क्योंकि ये चारों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। भ्रष्टाचार रहित, नैतिक, स्वस्थ, स्वावलंबी, सामंजस्य पूर्ण एवं वीरव्रती सुदृढ समाज के लिए कर्म पुरुषार्थ की साधना को जरूरी माना गया है। शरीर और समाज के पालन-पोषण, संतुलित संचालन तथा उत्तरोत्तर विकास के लिए अर्थ पुरुषार्थ आवश्यक होता है। इस तरह मनुष्य शरीर की कामनाओं, इच्छाओं, जरूरतों और मौलिक सुखों के लिए काम पुरुषार्थ की समझ भी आवश्यक मानी गई है। काम पुरुषार्थ को केवल मात्र कामवासना की पूर्ति समझ लेना भारी मूर्खता ही होगी। पाश्चात्य दृष्टिकोण से इसका यह निष्कर्ष ठीक हो सकता है, परंतु भारतीय विचार तत्त्व के अनुसार काम पुरुषार्थ का अभिप्राय मनुष्य के सर्वांग सुख से ही है। चतुर्थ पुरुषार्थ यानी मोक्ष का संबंध मनुष्य की सतत आध्यात्मिक साधना एवं जीवन-यात्रा के अंतिम ध्येय से है।

गांधी-नेहरू की विचार भिन्नता

यह जरूरी है कि अपने देश की सुख-समृद्धि के लिए चारों पुरुषार्थों की भारतीय अवधारणा को समय की आवश्यकता के अनुसार एक स्वतंत्र अर्थ-रचना में ढाला जाए। अंग्रेजों ने जिस प्रकार की अर्थ-रचना भारत के ज्यादातर ग्रामीण समाज पर थोपी थी, उससे देश का अनर्थ हुआ और स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् भी उसी को जारी रखा गया। इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि राष्ट्र के नवनिर्माण की आधारशला रखने के विषय पर महात्मा गांधी एवं पंडित जवाहर लाल नेहरू की विचारभिन्नता के कारण सर्वांग स्वतंत्रता की ओर बढ़ रहे भारत के कदमों में विदेशी बेड़ियाँ पूर्ववत् बनी रहीं। गांधीजी गाँव को इकाई मानकर लघु उद्योग आधारित अर्थ-रचना चाहते थे, परंतु नेहरूजी शहरों को इकाई मानकर बड़े-बड़े उद्योग कॉर्पोरेट हाऊस इत्यादि पर आधारित अर्थ-रचना चाहते थे। दोनों में कहीं समन्वय नहीं हो सका।

"पंडित नेहरू द्वारा अपनाई गई आर्थिक नीति पाश्चात्य विकास-पथ पर आधारित है, जो केंद्रीकृत, नगर आधारित, विपुल ऊर्जाभक्षी, भारी पूँजी आधारित, बेरोजगारी बढ़ानेवाली और पर्यावरण विनाशक है। जिन गांधीजी के आशीर्वाद से नेहरूजी देश के प्रधानमंत्री बने, उनके ही विकास-पथ को उन्होंने पूरी तरह ठुकरा दिया।" 5 अक्तूबर, 1945 को गांधीजी ने पंडित नेहरू को लिखे अपने एक पत्र में कहा था—"अब शीघ्र ही हमारा देश स्वतंत्र होनेवाला है। मैं तुमसे जानना चाहता हूँ कि उसे कौन से विकास-पथ पर ले चलोगे। जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने अपने हिंद स्वराज में पहले ही लिख दिया था कि भारत की 87 प्रतिशत आबादी ग्रामों में रहती है। अतः ग्रामों को अपनी विकास योजना का केंद्रबिंदु बनाना चाहिए, क्योंकि यह नहीं हुआ तो गाँववाले असत्य और हिंसा का आश्रय लेंगे।" इस पत्र को पढ़ने के पश्चात् पंडित नेहरू ने गांधीजी को दो टूक जवाब देते हुए लिखा था—"आपके यह विचार मैंने बीस साल पहले 'हिंद स्वराज' में पढ़े थे। तब भी उन पर मेरा विश्वास नहीं था। आज तो लगता है कि यदि हम उसी विकास-पथ पर बढ़ेंगे, तो प्रगति की दौड़ में दुनिया में पिछड़ जाएँगे। अतः शहरों को ही विकास का केंद्रबिंदु बनाना होगा और गाँवों को शहरी ढाँचे में ढालना होगा। जहाँ तक असत्य और हिंसा का प्रश्न है, वह तो ग्रामीणों के दिमाग में पलता है, क्योंकि वे बौद्धिक एवं संस्कृति-दृष्टि से अत्यंत पिछड़े रहते हैं।"

ग्राम स्वराज-एकात्म मानववाद-श्रमिक नीति

जाहिर है कि देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित नेहरू के मन में देश की 87 प्रतिशत जनसंख्या के प्रति कितनी गलतफहमी थी। नेहरूजी की इसी कुंठित मानसिकता के कारण रोजगार बढ़ानेवाले तथा पर्यावरण को सुरक्षित रखने वाले विकास-पथ/अर्थ-रचना का शुभारंभ नहीं हो सका। नेहरू नीति के दुष्परिणाम हमारा देश आज तक भुगतता चला आ रहा है। ग्रामीणों का शहरों की ओर पलायन बढ़ रहा है। पर्यावरण के खतरनाक नतीजे सबके सामने हैं। अमीरों और गरीबों में खाई बढ़ती जा रही है। किसान आत्महत्याएँ कर रहे हैं। बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। झुग्गी-झोंपड़ियों की संख्या बेतहाशा बढ़ रही है। शहरों में बनी एवं बन रही 18-20 मंजिल की ऊँची अट्टालिकाएँ झुग्गी-झोंपड़ियों और ग्रामीण इलाकों में रहनेवाले देश की अधिकांश आबादी का मजाक उड़ा रही हैं। अमीर-गरीब, शहर-गाँव, मालिक-मजदूर इत्यादि में भेद उत्पन्न करनेवाली अंग्रेज प्रदत्त आर्थिक रचना के स्थान पर स्वदेश, स्वदेशी एवं स्वधर्म आधारित भारतीय आर्थिक प्रणाली को अपनाने के लिए कोई विशेष परिश्रम करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। महात्मा गांधी का 'हिंद स्वराज' दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' तथा दत्तोपंत ठेंगड़ी की 'श्रमिक नीति' ऐसे शोध कार्य हैं, जिनमें भारत एवं भारतीयता के दर्शन होते हैं, भारत की स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों के कालखंड में हुए स्वतंत्रता संघर्ष के सबसे बड़े झंडाबरदार महात्मा गांधी के 'हिंद स्वराज' में देश की 87 प्रतिशत जनता की चिंता के साथ पूरे देश के विकास की नीति पर बल दिया गया है। इसीलिए गांधीजी की इस पुस्तक 'हिंद स्वराज' को उनका घोषणा-पत्र कहा जाता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक एवं भारतीय जनसंघ के संस्थापक महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शोध कार्य के 'एकात्म मानववाद' में मनुष्य के समग्र विकास की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इसी प्रकार संघ के एक और प्रचारक एवं भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक दत्तोपंत ठेंगड़ी के शोधग्रंथ 'श्रमिक नीति' में सभी प्रकार के मेहनतकश वर्गों के विकास एवं उत्थान का एक ब्लूप्रिंट तैयार किया गया है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे महापुरुष हुए हैं, जिन्होंने समय-समय पर देश की स्वदेशी आर्थिक रचना पर सुझाव दिए हैं। अतः आवश्यकता उसी बात की है कि राजनीतिक एवं दलगत स्वार्थों से ऊपर उठकर एक ऐसी अर्थनीति अख्तियार की जाए, जिससे भारत के समग्र विकास के रास्ते खुलें।

स्वाधीन भारत में पराधीन मानसिकता

भौगोलिक, संवैधानिक, शैक्षणिक एवं आर्थिक स्वाधीनता के साथ-साथ देश की सांस्कृतिक स्वाधीनता का भी अपना एक विशेष महत्त्व होता है। संस्कृति राष्ट्रजीवन का आधार होती है और राष्ट्र के संपूर्ण शरीर में रक्त का संचार करती है। परतंत्र देश में विदेशी शासक स्वदेशी संस्कृति पर ही पहला प्रहार करते हैं। हमारे साथ भी ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने यही किया है। ईसाई मत के प्रसार/प्रचार के लिए हमारी विशाल स्वदेशी संस्कृति के विविध स्वरूपों को तहस-नहस कर दिया गया। भारत के साहित्य, कला, दर्शन, स्मृति, शास्त्र, समाज-रचना, इतिहास एवं सभ्यता को तोड़-मरोड़कर शिक्षा के माध्यम से बच्चों के सामने परोस दिया गया। परतंत्रता के काल में हमारे गतिशील सांस्कृतिक प्रवाह को अवरुद्ध कर दिया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह जरूरी था कि हमारी सांस्कृतिक गतिशीलता की संपूर्ण बाधाएँ समाप्त हों। इसके बिना राष्ट्र की स्वतंत्रता निरर्थक ही साबित होगी। आज हमारे त्योहारों, उत्सवों, बच्चों के जन्मदिवस कार्यक्रमों, विवाह इत्यादि के जश्न पर पाश्चात्य संस्कृति की पकड़ बढ़ रही है। ग्लोबलाइजेशन के नाम पर हम स्वसंस्कृति/सभ्यता को तिलांजलि दे रहे हैं। अपनी जड़ों से कटकर हम कितने दिन तक जिंदा रह सकते हैं? कितने आश्चर्य की बात है कि जिन विदेशी ताकतों के विरुद्ध हमने सदियों तक जंग लड़ी है, उनकी ही जीवन प्रणाली को हम आधुनिकता के नाम पर अपनाकर गौरव महसूस कर रहे हैं। यह मानसिक एवं बौद्धिक परतंत्रता नहीं तो और क्या है? हमने मात्र गोरे लोगों को भगाकर काले लोगों को सत्तासीन करने के लिए स्वतंत्रता संग्राम नहीं लड़ा था। हमारी जंग इसलिए थी, क्योंकि हमारे दिन-प्रति-दिन के जीवन में, हमारे जीवन की गति में विदेशी पद्धतियाँ/रीति-रिवाज, विदेशी दृष्टिकोण और विधर्मी आदर्श बाधक बन रहे थे। इसीलिए महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता का अर्थ रामराज्य की स्थापना घोषित किया था।

अब चली परिवर्तन की लहर

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शब्दों में—"हम स्वतंत्र तो हो गए हैं, परंतु हमारे राष्ट्र का गुरुत्वाकर्षण केंद्र अब भी हमारे राष्ट्र के बाहर ही है।''' हम अनुकरण तो करते हैं, परंतु अपने महापुरुषों का नहीं, बल्कि परायों का। हमारे प्रमाण और आदर्श वाक्य वेद, स्मृति, गीता, उपनिषद् और पुराण नहीं, बल्कि मिल्ल, हेगल, एडम, स्मिथ, मार्क्स और एंजलस हो गए हैं। हमारा खान-पान/रहन-सहन, बोलचाल इत्यादि सभी बाहरी आदर्शों से प्रभावित है।''' एकात्मता के

बंधन ढीले पड़ गए हैं। राष्ट्रभाव के ह्रास से अनेकों समस्याओं को जन्म मिला है। यह एक त्रिकालबाधित सत्य है कि राष्ट्रभाव को छोड़कर कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता, न अतीत में कर सका है, न भविष्य में कर सकेगा। जब तक धर्म और संस्कृति के बारे में पूर्वाग्रह छोड़कर उसके व्यापक एवं सनातन तत्त्व का साक्षात्कार कर राष्ट्रजीवन को सुदृढ़ बनाने का प्रयास नहीं होता, तब तक हमारी सर्वांगीण उन्नति का पथ अवरुद्ध ही रहेगा।''

भारतवासियों के सुभाग्य से आज परिवर्तन की एक लहर चलना प्रारंभ हुई है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की सतत साधना के फलस्वरूप आज राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में राष्ट्रभाव का जागरण हो रहा है। महात्मा गांधी की 'रामराज्य' की कल्पना साकार रूप ले रही है। 'भारत की सर्वांग स्वतंत्रता के अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए संघ के स्वयंसेवक समाज को साथ लेकर आगे बढ़ रहे हैं। बहुत कुछ हो गया है, परंतु बहुत कुछ रह भी गया है। जो रह गया है, उसे प्राप्त करने के लिए संघ संघर्षरत है।

□